वेदविज्ञानरहस्यविद् स्वामी सुरजनदास जी

प्रणम्यः सद्गुरुः शान्तः स्वामी सुरजनः सदा।
यत्कृपालवलेशेन सत्तर्कस्फुरणं मम।।

पूज्य गुरुवर्य स्वामी श्री सुरजनदास जी बीसवीं शताब्दी में राजस्थान के सुविख्यात तथा यशस्वी संस्कृतविपश्चित् आचार्य और वेदविज्ञान के रहस्यविदों में अन्यतम थे। उनके विषय में भी यह उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है-

नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।

पूज्य स्वामीजी का जन्म शेखावाटी में झुंझुनू जिले के जेजूसर नामक गाँव में एक कृषक परिवार में हुआ था। वे बाल्यावस्था में ही उदयपुर शेखावाटी की दादूसन्तमण्डली के प्रधान स्वामी श्री गीधारामजी द्वारा दादूसम्प्रदाय में दीक्षित हो गये थे। उनकी संस्कृतशिक्षा जयपुर के सुप्रसिद्ध दादू संस्कृत महाविद्यालय तथा वाराणसी में सम्पन्न हुई। पूज्य स्वामीजी के अध्ययन तथा प्रारम्भिक अध्यापन के समय निष्कामकर्मयोगी सन्त शिरोमणि स्वामी श्री मङ्गलदास जी के कुशल सञ्चालकत्व के कारण दादू संस्कृत महाविद्यालय जयपुर में श्रेष्ठतम संस्कृत महाविद्यालय के रूप में सुप्रथित हो गया था । पूज्य स्वामी सुरजनदास जी ने सन् १९८९ में उनके जीवन में अन्तिम ग्रन्थ के रूप में सम्पादित ''त्यागमूर्ति स्वामी श्री मङ्गलदास स्मृति-ग्रंथ'' में दादू संस्कृत महाविद्यालय की उच्च प्रतिष्ठा का निरूपण किया है। प्रारम्भ में पण्डित रामचन्द्र जी महाविद्यालय के लब्धप्रतिष्ठ प्राचार्य थे। पूज्य स्वामी जी ने दादू महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में भी कार्य किया था। उन्होंने दादूसम्प्रदाय के प्रति अनन्य आस्था के कारण 'श्रीदादूवाणी' का संस्कृत में पद्यानुवाद किया था, जो अप्रकाशित है।

पूज्य स्वामी जी ने वाराणसी की साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य, सांख्ययोगाचार्य तथा वेदान्ताचार्य - चार स्नातकोत्तर संस्कृतपरीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थीं। इस प्रकार वे प्रारम्भ में ही श्रेण्य संस्कृतसाहित्य,

संस्कृतव्याकरण तथा दर्शनशास्त्र के निष्णात विद्वान् के रूप में प्रथित हो गये थे। संस्कृत की इन चार प्राच्य स्नातकोत्तर उपाधियों को प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने सन् १९४८ में राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर की पहली एम.ए. (संस्कृत) परीक्षा में प्रथम श्रेणी तथा प्रथम स्थान प्राप्त किया। पूज्य स्वामी जी के प्राप्ताङ्कों की प्रतिशतता (Percentage) राजस्थान विश्वविद्यालय के समस्त संकायों की स्नातकोत्तर परीक्षाओं में सर्वोच्च थी, अत: उनको चान्सलर मेडल (कुलाधिपति-पदक) प्रदान किया गया।

पूज्य स्वामी जी ने दादू संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापन शुरू करने के समकाल में समीक्षा चक्रवर्ती पण्डित ओझा जी के सान्निध्य में वेद-विज्ञान का भी अध्ययन किया। महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी द्वारा रचित 'श्री मधुसूदन ओझा-चरितामृत' और मानवाश्रम विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित गुरु-शिष्य की संक्षिप्त परिचयात्मक पुस्तिका तथा 'वेदविज्ञानविद् गुरुशिष्यत्रयी' नामक ग्रन्थ में पण्डित ओझा जी की शिष्य परम्परा में पूज्य स्वामी जी के नाम का स्पष्ट उल्लेख है। उनका नाम नियमपूर्वक पुस्तक खोल कर पण्डित ओझा जी से अध्ययन करने वाली शिष्य मण्डली में उल्लिखित है। शिष्यमण्डली के मध्य में विराजमान पण्डित ओझा जी के एक फोटो की प्रतिलिपि में स्वामी जी का भी चित्र विद्यमान है। शिष्यमण्डली की सूची में उनके नाम के आगे 'वेदान्त-व्याकरणाचार्य, दादू संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर' भी उल्लिखित है। पण्डित ओझा जी के सुपुत्र पं. प्रद्युम्न ओझा ने 'महर्षिकुलवैभवम्' (ग्रन्थाङ्क ५९) की भूमिका में ग्रन्थों के सम्पादन तथा प्रकाशन में सहयोग करने वाले शिष्यों में पूज्य स्वामी जी के नाम का भी उल्लेख करते हुए आभार व्यक्त किया है। पूज्य स्वामी जी वेदविज्ञानगुरु पण्डित ओझा जी के अतिश्रद्धावान् शिष्य थे।

पूज्य स्वामी जी ने प्रारम्भ में दादू संस्कृत महाविद्यालय में प्राध्यापक तथा प्राचार्य के रूप में अध्यापन किया। तदनन्तर वे राजकीय महाविद्यालयीय शिक्षा में संस्कृत - प्राध्यापक के रूप में चयनित हो गए। जयपुर, किशनगढ़ तथा बीकानेर के राजकीय महाविद्यालयों में संस्कृत-प्राध्यापक के रूप में अध्यापन के पश्चात् वे कोटा तथा अजमेर के राजकीय महाविद्यालयों में स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। वे संस्कृत के अध्यापन में इतने अधिक परिश्रमी और कुशल थे, कि राजस्थान विश्वविद्यालय की एम.ए. (संस्कृत) परीक्षा में पाँच वर्षों तक निरन्तर उनके महाविद्यालय के संस्कृत विद्यार्थी ने ही सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। राजस्थान के महाविद्यालयों में संस्कृत-प्राध्यापक के रूप में वे सर्वाधिक लब्धप्रतिष्ठ थे। उस समय सम्पूर्ण राजस्थान में एकमात्र स्वामीजी ही चार विषयों में आचार्योपाधिधारी थे। वे संस्कृत-काव्यशास्त्र, संस्कृतव्याकरण, दर्शनशास्त्र तथा

वेदशास्त्र - इन सब विषयों के अध्यापन में निष्णात थे।

दादू महाविद्यालय तथा राजकीय महाविद्यालयों के संस्कृत विभागों में अध्यापन में अत्यधिक व्यापृत रहने पर भी पूज्य स्वामी जी के सम्पादकत्व में वेदविज्ञान के आठ ग्रन्थ प्रकाशित किये गए। वे हैं-

1. आधिदैविकाध्याय : (हिन्दीभाषानुवाद-सहित)
2 आशौचपञ्जिका (हिन्दी में सारांश सहित)
3 पदनिरुक्तम्
4. देवासुरख्याति : (ग्रन्थसारात्मक हिन्दी भूमिका सहित)
5. पुराणोत्पत्तिप्रसङ्गः (हिन्दी में विस्तृत भूमिका सहित)
6. मन्वन्तरनिर्धारः (हिन्दी में प्रास्ताविक सहित)
7. सन्ध्योपासनरहस्यम् (हिन्दी में अनुवाद तथा यज्ञोपवीत विज्ञान के हिन्दी सारांश से युक्त)
8. वैज्ञानिकोपाख्यानं वैदिकोपाख्यानञ्च

इस प्रकार उन्होंने वेदविज्ञान गुरु पण्डित ओझाजी के प्रति अपने कर्तव्य का मनोयोगपूर्वक निर्वाह किया। उनके द्वारा रचित पितृतत्त्व नामक ग्रन्थ और विचारसागर का संस्कृत-रूपान्तर अप्रकाशित है।

तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय में प्रारम्भिक वर्षों में संस्कृत विषय के स्नातकस्तरीय अध्ययन की ही व्यवस्था थी। पूज्य स्वामी जी सन् 1966 के जून मास में तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के नये स्नातकोत्तर संस्कृत-विभाग में प्रथम अध्यक्ष नियुक्त हुए। उनके अतिरिक्त जो संस्कृत व्याख्याता थे, उनमें से किसी को भी एम.ए. संस्कृत की कक्षाओं को पढ़ाने का पूर्वानुभव नहीं था, अतः उन्होंने अकेले ही निरन्तर चार शैक्षिक सत्रों तक एम.ए. (संस्कृत) की पूर्वार्ध और उत्तरार्ध कक्षाओं के अधिकतर पाठ्यविषयों का जनवरी से मार्च तक अतिरिक्त अध्यापन भी किया। यदि संस्कृतवाङ्मय के किसी एक विषय के विशेष अध्ययन (Specialization) वाला कोई विद्वान् रीडर पद पर चयनित होकर आ जाता, तो तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग की स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों की कैसी दुर्दशा होती, उसकी कल्पना की जा सकती है। पूज्य स्वामीजी का यह महनीय अवदान है, कि उन्होंने तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्याालय के नये स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग को अपने नानाशास्त्रवैदुष्य और संकल्पोत्साह (Missionary Zeal) से सुस्थापित किया। उन्होंने लौकिक संस्कृत साहित्य

ग्रुप के अतिरिक्त दर्शनशास्त्र ग्रुप भी विशेषाध्ययन के लिए शुरू किया। प्रारम्भ में पूज्य स्वामी जी अकेले ही एम.ए. उत्तरार्ध के दर्शनशास्त्र ग्रुप के विद्यार्थियों का अध्यापन करते थे।

पूज्य स्वामीजी की अध्यापनशैली की यह प्रातिस्विक विशेषता विशेष रूप से उल्लेखनीय है, कि वे प्रतिसप्ताह शनिवार के दिन प्रथम दो कालांश तक एम.ए. संस्कृत के पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध के विद्यार्थियों की सम्मिलित कक्षा में सामान्य ज्ञान के संवर्धनार्थ संस्कृतवाङ्मय के विभिन्न विषयों पर चर्चा करते थे। अन्तिम दो कालांशों में पूर्वनिर्देशित कोई विद्यार्थी अपने अभीष्ट विषयबिन्दु (Topic) पर पत्र-वाचन करता था और बाद में पत्र के प्रतिपाद्य के बारे में पूज्य स्वामीजी समीक्षात्मक व्याख्यान देते थे। इस प्रकार पत्रवाचन की पद्धति से विद्यार्थियों में शोधप्रवृत्ति जाग्रत् होती थी। इसके अतिरिक्त प्रतिसप्ताह किसी एक पाठ्य विषय की लघु परीक्षा होती थी। अधिकतम दस अंकों के आधार पर उत्तरपुस्तिकाओं का प्राध्यापकों द्वारा मूल्याङ्कन किया जाता था। इस प्रकार विश्वविद्यालय की वार्षिक परीक्षा से पहले सभी पाठ्य विषयों की अनेक लघुपरीक्षाएँ सम्पन्न हो जाती थीं।

इस परीक्षण पद्धति का यह लाभ था, कि विद्यार्थी वार्षिक परीक्षा की विभीषिका से मुक्त हो जाते थे। यह सब पूज्य स्वामी जी की अध्यापन पद्धति का अभिनव प्रयोग (Innovation) था। तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्कृत - विभाग के अतिरिक्त किसी भी अन्य विभाग में इस प्रकार की त्रिविध पद्धति का प्रचलन नहीं था। लघु परीक्षाओं के आयोजन के कारण द्वितीय श्रेणी की योग्यता वाले विद्यार्थी भी प्रथम श्रेणी के योग्य हो जाते थे। पूज्य स्वामीजी तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त होने से पहले ही राजकीय महाविद्यालयों के स्नातकोत्तर संस्कृत-विभागों में इस प्रकार की त्रिविध पद्धति को कार्यान्वित करने में अभ्यस्त थे। महाकवि कालिदास ने श्रेष्ठ शिक्षक की परिभाषा देते हुए कहा है-

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ।।

पूज्य स्वामी की संस्कृतवैदुषी अगाध थी और विद्यार्थियों में ज्ञान की संक्रान्ति (Transmission) में वे अतिकुशल थे, अतः यह निःसन्दिग्ध रूप से कहा जा सकता है, कि वे अपने अध्यापन-काल में राजस्थान के समस्त

संस्कृत- प्राध्यापकों में अग्रगण्य थे। संस्कृत के अध्यापन के लिए उनका समर्पण-भाव अलोकसामान्य था।

पूज्य स्वामी जी ने संस्कृतविभाग की स्नातकोत्तर कक्षाओं के अध्यापन - कार्य से अतिभारित होने पर भी पण्डित ओझाजी के 'पथ्यास्वस्ति' नामक ग्रन्थ की सन् 1968 में हिन्दीव्याख्या (विस्तृत प्राक्कथन सहित) लिख कर सम्पादित की । यह ग्रन्थ राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा सन् 1969 में प्रकाशित किया गया। संस्कृत के विद्वानों के सतत आग्रह के कारण 1996 में 'पथ्यास्वस्ति' के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन किया गया। यह ग्रन्थ सभी विश्वविद्यालयों के संस्कृतव्याकरणशास्त्र के स्नातकोत्तर पाठयक्रम में निर्धारित होना चाहिए। स्वयं स्वामी जी ने उक्त ग्रन्थ के प्राक्कथन में विद्वानों से एतद्विषयक अनुरोध किया है। मैं यहाँ यह उल्लेख कर देना चाहता हूँ कि प्राक्कथन और हिन्दी-व्याख्या से संवलित 'पथ्यास्वस्ति' ग्रन्थ की मुद्रणयोग्य सुस्पष्ट हस्तलिपि (Press Ready Copy) गुर्वाज्ञा से मैंने सम्पन्न की थी। पूज्य स्वामी जी संस्कृत के सर्वतोमुखी अगाध वैदुष्य के कारण हम विद्यार्थियों को संस्कृत-पाण्डित्य के मूर्तरूप और शरीरबद्ध अध्यवसाय के रूप में प्रतीत होते थे। तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विद्यार्थियों के सामूहिक पूर्व सुकृत का ही फल था, कि पूज्य स्वामी जी नवीन स्नाकोत्तर संस्कृत-विभाग के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त हुए।

पूज्य स्वामीजी की विलक्षण स्मरणशक्ति के कारण उनकी विद्या पुस्तकस्था न होकर पूर्णतया कण्ठस्था थी। उनको एम.ए. (संस्कृत) के पाठ्यग्रन्थ रसगङ्गाधर, साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, तर्कभाषा, वेदान्तसार, सांख्यकारिका, मेघदूत आदि कण्ठस्थ थे, अतः वे कक्षाओं में ग्रन्थों के मूल पाठ को देखे बिना ही पढ़ाते थे। वे अनुवादरहित दुर्बोध दर्शनशास्त्रीय ग्रन्थों, भाष्यों और टीकाओं का तात्पर्यार्थ बतलाने में अतिकुशल तथा कुशाग्रबुद्धि थे। उनके शोधनिर्देशन में आठ शोधार्थियों ने संस्कृत में पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। उन्होंने षड्दर्शनी में अध्याय का स्वरूप, भामती नामक टीकाग्रन्थ का समालोचनात्मक अध्ययन तथा कालिदासीय कृतियों में दार्शनिक पृष्ठभूमि जैसे दर्शनशास्त्रीय दुरूह विषयों पर शोधकार्य सम्पन्न करवाया। मैंने पूज्य स्वामीजी के निर्देशन में क्रान्तिकारी नैयायिक भासर्वज्ञ के न्यायसार पर शोधकार्य सम्पन्न किया। न्यायसार के 500 वर्षों तक विलुप्त बृहदाकार स्वोपज्ञ टीका ग्रन्थ 'न्यायभूषणम्' के सन् 1968 में इदम्प्रथमतया प्रकाशित हो जाने के कारण 'न्यायसार' का समालोचनात्मक अध्ययन अत्यधिक अपेक्षित था।

प्रासंगिक रूप से यह उल्लेखनीय है, कि सन् 1972 में उपयुक्त शोधविषय के चयन के उद्देश्य से तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के केन्द्रीय ग्रन्थालय में विभिन्न संस्कृत-ग्रन्थों का अवलोकन करते समय मुझे पण्डित ओझा

जी का गीताविज्ञानभाष्यम् भी प्राप्त हुआ। मैंने घर आ कर पूज्य गुरुवर्य स्वामीजी से पूछा - 'क्या गीताविज्ञानभाष्य पर शोधकार्य किया जा सकता है,' तो उन्होंने तत्काल कहा- 'क्यों नहीं'। वे जिसके लिए आदेशात्मक वाक्य कह देते थे, तो निर्णय हो जाता था। तत्पश्चात् पूज्य स्वामी जी ने जयपुर के मानवाश्रम विद्यापीठ से स्व. पण्डित मोतीलाल शास्त्री द्वारा रचित और अप्रकाशित कठोपनिषद्विज्ञानभाष्य के दो हस्तलिखित बड़े रजिस्टर लाकर मुझे कहा कि इस विज्ञानभाष्य के आधार पर कठोपनिषद् के समीक्षात्मक अध्ययन के लिये भी शोधकार्य किया जा सकता है। उन्होंने राजस्थान प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान के तत्कालीन निदेशक वेदविद् डॉ. फतहसिंह जी के निर्देशन में उस विषय पर शोधकार्य करने का आदेश दिया, परन्तु मैं उस विषय पर शोधकार्य में प्रवृत्त नहीं हो सका। वस्तुतः कारण यह था कि मैंने एम.ए. (संस्कृत) के उत्तरार्ध में भारतीय दर्शनशास्त्र का विशेष अध्ययन किया था, अतः मैं दर्शनशास्त्र के ही किसी उपयुक्त विषय पर पूज्य स्वामीजी के निर्देशन में शोधकार्य करना चाहता था, क्योंकि वे दर्शनशास्त्र के उद्भट विद्वान् थे।

तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय से सन् 1974 के दिसम्बर में सेवानिवृत्त होने के अनन्तर पूज्य स्वामी जी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिए और पूर्वनिर्णयानुसार वे अखिल भारतवर्षीय उदासीन साधुसम्प्रदाय के प्रधान महामण्डलेश्वर वेदविद् श्री गङ्गेश्वरानन्द जी के साथ रह कर 8 वर्ष तक वैदिक ग्रन्थों के अनुवाद आदि कार्य में निरत रहे। उस कालावधि में भारत के विभिन्न नगरों में श्री गङ्गेश्वरानन्दजी के सान्निध्य में आयोजित व्याख्यान-कार्यक्रमों में पूज्य स्वामी जी ने वेदविज्ञानविषयक अनेक व्याख्यान दिये, जिनका सम्भवतः टेप रिकार्ड किया गया होगा। उन्होंने चतुर्मासावधियों में दादूपन्थी सन्त के रूप में आध्यात्मिक विषयों पर भी अनेक व्याख्यान दिये। पूज्य स्वामी जी ने अध्यापन की सम्पूर्ण कालावधि में संस्कृतकाव्यशास्त्र का भी अध्यापन किया था, अत. 'दुर्व्याख्याविषमूर्च्छित' संस्कृतकाव्यशास्त्र के उद्धार के लिए पूर्वरचित 'रससिद्धान्त की शास्त्रीय समीक्षा' नामक मौलिक ग्रन्थ को सन् 1983 में प्रकाशित किया। यह उल्लेखनीय है कि पूज्य स्वामी जी राजस्थान के संस्कृतविद्वानों में स्व. डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा, डॉ. कलानाथ शास्त्री 'देवर्षि' तथा अपने ज्येष्ठ शिष्य प्रोफेसर (डॉ.) मूलचन्द्र पाठक के संस्कृतवैदुष्य का अत्यधिक आदर करते थे और इन तीनों विद्वानों से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनकी इच्छा के अनुसार इन तीनों विद्वानों ने 'रससिद्धान्त की शास्त्रीय समीक्षा' ग्रन्थ के विषय में सम्मतियाँ लिखीं, जो ग्रन्थ के प्रारम्भ में प्रकाशित हैं।

पूज्य स्वामी जी के इस ग्रन्थ में प्रस्तुत उनके अतिसंक्षिप्त परिचय से यह ज्ञात होता है, कि उन्होंने

शतपथब्राह्मण के प्रथम काण्ड के छठे, सातवें, आठवें और नवम अध्यायों तथा द्वितीय काण्ड का स्वलिखित हिन्दी अनुवाद वेदवाचस्पति मोतीलाल शास्त्री के हिन्दी विज्ञानभाष्य के साथ सम्पादित किया। पूज्य स्वामी जी के वेदविज्ञानाधारित 'पुराणरहस्य' नामक लघु ग्रन्थ का राजस्थान पत्रिका द्वारा सन् १९८७ में प्रकाशन किया गया। इस ग्रन्थ को पढ़ने से मुझे ज्ञात हुआ, कि यह आकार में लघु होने पर भी पुराणों के रहस्यविज्ञान का प्रतिपादक होने के कारण भ्रान्तिनिवारक और महत्त्वपूर्ण है। सभी प्रबुद्ध पाठकों द्वारा इसका अध्ययन किया जाना चाहिए।

राजस्थान पत्रिका के रविवारीय संस्करणों में वेदविज्ञानविद् श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश जी द्वारा प्रवर्तित वेदविज्ञानलेखमाला के अन्तर्गत पूज्य स्वामी जी के भी वेदविज्ञानविषयक अनेक लेख प्रकाशित हुए थे। उन्होंने पण्डित ओझाजी के 'छन्दःसमीक्षा' नामक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि कहीं से प्राप्त की। जीवन के उपान्त्य (अन्तिम से पूर्ववर्ती) वर्ष अर्थात् सन् १९८९ में पूज्य स्वामी जी ने संक्षिप्त भाषानुवादमयी भूमिका लिख कर सम्पादन किया और राजस्थान संस्कृत अकादमी द्वारा उस ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया। अकादमी के तत्कालीन अध्यक्ष महोदय ने 'प्रकाशकीय' में लिखा है – ''यह स्मरणीय है कि पुस्तक के प्रकाशन, पाण्डुलिपि निर्माण तथा प्रूफ संशोधन में सक्रिय सहयोग प्रदान करने लिए स्वामी जी के अनन्य प्रिय शिष्य वेदविज्ञानवेत्ता पं. अनन्तराम शर्मा, डॉ. नरेशचन्द्र पाठक तथा डॉ. शिवचरण गर्ग धन्यवाद के पात्र हैं''। पूज्य स्वामी जी पण्डित अनन्त शर्मा जी के वेदविज्ञानवैदुष्य से अत्यधिक प्रभावित थे।

पूज्य स्वामी जी ने 'छन्दःसमीक्षा' नाम ग्रन्थ के संक्षिप्त भाषानुवाद तथा सम्पादन के रूप में वेदविज्ञान के महायज्ञ में अन्तिम आहुति अर्पित की। यह ग्रन्थ समीक्षाचक्रवर्ती पण्डित ओझाजी के वेदाङ्गसमीक्षा नामक ग्रन्थविभाग के वाक्पदिका नामक उपविभाग के अन्तर्गत है। पूज्य स्वामीजी के संक्षिप्त भाषानुवाद से यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि वे वैदिक छन्दःशास्त्रविज्ञान में भी पारङ्गत थे। राजस्थान संस्कृत अकादमी के तत्कालीन अध्यक्ष महोदय ने 'प्रकाशकीय' में पूज्य स्वामी जी का उपकार मानते हुए कहा है – ''प्रस्तुत ग्रन्थ दीर्घावधि तक अनुपलब्धता के कारण प्रकाश में नहीं आ सका था, परन्तु संस्कृत-जगत् के सौभाग्य से दार्शनिकविद्वन्माला के सुमेरु, अनेक विषयों के मर्मज्ञ आचार्य तथा सम्मानित लेखक पूज्य स्वामीजी श्री सुरजनदास जी महाराज को इसकी एक प्रति कहीं से उपलब्ध हुई। ग्रन्थ को उपयोगी समझ कर उन्होंने संस्कृत अकादमी को इसके प्रकाशन हेतु प्रेषित किया। उत्तर में अकादमी के साग्रह निवेदन को स्वीकार कर स्वामी जी

ने अस्वस्थ होते हुए भी स्वयं इसका हिन्दी अनुवाद कर सम्पादित करने तथा अजमेर में ही प्रकाशित कराने का दायित्व अपने ऊपर लेते हुए हमारा बड़ा उपकार किया। इसके लिए उस महान् विभूति को शतसहस्रशः नमन''।

वेदविज्ञानविद् स्व. श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश जी द्वारा प्रकाशित बृहदाकार चतुर्वेदसंहिता-ग्रंथ (काष्ठमयमञ्जूषानिहित) पूज्य स्वामी जी द्वारा संस्कृत में लिखित वेदरहस्योद्घाटक विस्तृत भूमिका से संवलित है। पूज्य स्वामी जी अगाध संस्कृतवैदुष्य, तेजस्विता, ब्रह्मवर्चस् स्नेह, सरलता आदि के कारण संस्कृतविद्वज्जनों के लिए समुद्र की तरह अधुष्य (Inaccessible) भी थे और अभिगम्य (Approachable) भी। तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग में उनकी अध्यक्षता के काल में ही मैं अस्थायी और स्थायी संस्कृतव्याख्याता के रूप में नियुक्त हुआ। नवम्बर, १९८४ में सागर (मध्यप्रदेश) के डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग में रीडर पद पर चयनित होने के पश्चात् मैं सागर में कार्यभार-ग्रहण करने से पहले पूज्य गुरुवर्य स्वामीजी की आज्ञा प्राप्त करने के लिए अजमेर गया था।

यह उल्लेखनीय है कि महाराणा मेवाड़ चैरिटेबल फाउण्डेशन, उदयपुर का 'महर्षि हारीत ऋषि सम्मान' पहली बार पूज्य स्वामी जी तथा उदयपुर के पण्डित गिरिधारीलाल जी को प्रदान किया गया था। पूज्य स्वामी जी के व्यक्तित्व, शास्त्रवैदुष्य तथा सक्रिय अध्यवसाय के विषय में रघुवंश का यह श्लोक पूर्णतया चरितार्थ होता है-

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः।।

जिस प्रकार सत्रहवीं शताब्दी ईस्वी के न्यायवैशेषिक के धुरन्धर विद्वान् न्यायपञ्चानन विश्वनाथ भट्टाचार्य ने राजीव नामक शिष्य के प्रति दया के अधीन होकर 'न्यायसिद्धान्तमुक्तावली' नामक स्वोपज्ञ टीका की रचना की, उसी प्रकार पूज्य स्वामी जी सम्पूर्ण अध्यापन-काल में दुर्बोध्य संस्कृतग्रन्थों का केवल अध्यापन ही नहीं कराते थे, अपितु शिष्यों के प्रति दया के अधीन होकर कठिन शास्त्रीय प्रश्नों के उत्तर भी लिखवाते थे। उनके अध्यापन-काल में कई दुर्बोध्य संस्कृत-ग्रन्थों की हिन्दी व्याख्याएँ थीं ही नहीं। इसलिए जिस प्रकार नैयायिकप्रवर विश्वनाथ भट्टाचार्य 'राजीवदयावशंवदः' थे, उसी प्रकार पूज्य स्वामी जी 'शिष्यदयावशंवदः'

थे। प्रारम्भ में दीर्घकाल तक दादू संस्कृत महाविद्यालय में शास्त्री और आचार्य कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाने के कारण पूज्य स्वामी जी संस्कृतभाषा के माध्यम से अध्यापन में भी पूर्णतया दक्ष थे।

यह उल्लेखनीय है कि वेदविज्ञानविद् स्व. श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश जी की सत्प्रेरणा से पण्डित मधुसूदन ओझा की वेदविज्ञानविषयक सारस्वत साधना को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर तथा तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग के संयुक्त तत्त्वावधान में फरवरी, १९९० में इदम्प्रथमतया आयोजित त्रिदिवसीय अखिल भारतीय विद्वत्सम्मेलन में पूज्य स्वामी जी का भी सान्निध्य प्राप्त हुआ था। उन्होंने एक से अधिक सत्रों की अध्यक्षता की थी और वेदविज्ञानविषयक तीन शोधपत्र भी प्रस्तुत किये थे। वे इस प्रकार हैं–

१. अत्रि ऋषि तथा अत्रिप्राण का निरूपण

२. वेद में विज्ञान

३. श्राद्धविज्ञान

उक्त सम्मेलन के समापन–समारोह के पश्चात् वेदविज्ञानविद् स्व. कर्पूरचन्द्र कुलिश जी की अध्यक्षता और पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य में भावी कार्ययोजना के लिए आयोजित विद्वत्सभा में यह निर्णय किया गया कि जून, १९९० के प्रारम्भ में एक पञ्चदशदिवसीय वेदविज्ञान–कार्यशाला (Workshop) जयपुर में श्री कुलिश जी द्वारा आयोजित की जायेगी। दिनाङ्क १ जून, १९९० से १५ जून तक जयपुर में आयोजित वेदविज्ञानविषयक कार्यशाला में पूज्य स्वामीजी ने विभिन्न विषयों पर पन्द्रह व्याख्यान प्रस्तुत किये। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन में वेदविज्ञान के महायज्ञ में व्याख्यानरूपी अन्तिम आहुति अर्पित की। उस कार्यशाला की अवधि में पूज्य गुरुवर्य के सान्निध्य में रहने का मेरा अन्तिम अवसर था।

१५ जून, १९९० को आयोजित समापन समारोह में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री भैंरोसिंह जी शेखावत ने श्री कर्पूरचन्द्र कुलिश जी, पूज्य स्वामी जी तथा विद्वत्समूह की उपस्थिति में जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में 'पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ' की स्थापना की घोषणा की। यह मेरे अनेक जन्मोपार्जित सुकृत, विद्याभ्यास और सतत शास्त्रानुशीलन का ही फल था, कि मैं विश्व में इदम्प्रथमतया स्थापित पण्डित मधुसूदन ओझा शोधप्रकोष्ठ के प्रथम निदेशक के रूप में दिसम्बर, १९९१ में चयनित तथा

नियुक्त हुआ। सेवानिवृत्ति (२८ फरवरी, २००७) तक मैं असहाय एकाकी ही शोधप्रकोष्ठ के ग्रन्थप्रकाशन आदि समस्त कार्यों को सम्पन्न करता हुआ वेदविज्ञानविषयक सारस्वत साधना में पूर्ण मनोयोग और संकल्पोत्साह के साथ तल्लीन रहा। पूज्य स्वामी जी को यह पूर्वाभास नहीं हो सका, कि उनका ही एक शिष्य शोधप्रकोष्ठ का प्रथम निदेशक नियुक्त होकर वेदविज्ञानविषयक सारस्वत साधना में सम्प्रवृत्त होगा। मैंने निदेशक के रूप में कार्य करते हुए वेदविज्ञान के दस ग्रन्थों का प्रकाशन किया था, जिनमें से चार ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद, टिप्पणीभाग तथा भूमिकादि से युक्त हैं, पाँच ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद तथा भूमिकादि से युक्त हैं और एक ग्रन्थ पण्डित ओझा जी के 'महर्षिकुलवैभवम्' (ग्रन्थाङ्क ६) से सम्बन्धित शोधलेखों का संग्रह ग्रन्थ है।

पूज्य स्वामी जी शास्त्रों के स्मरण, ग्रहण और धारण की अद्भुत शक्ति के कारण वेदविज्ञान तथा अन्य शास्त्रीय विषयों पर बिना किसी तैयारी, पूर्व लेखन तथा लिखित बिन्दुओं के स्वतंत्र रूप से (Extempore) व्याख्यान देते थे। वैसा सर्वतोमुखी संस्कृतवैदुष्य विरले महामनीषी को ही प्राप्त होता है।

पूर्वोक्त कार्यशाला की परिसमाप्ति के पश्चात् जयपुर से अजमेर लौटने पर वे अत्यधिक अस्वस्थ हो गए थे और तीन दिन तक रुग्णावस्था के पश्चात् ३ अगस्त १९९० को वह विभूति ब्रह्मलीन हो गयी। पूज्य स्वामी जी की आध्यात्मिक साधना की यह विशेषता थी, कि उन्होंने यावज्जीवन ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर नियमित रूप से मालाजाप तथा दादूवाणी का पाठ किया। मैंने यह देखा है कि जीवन के अन्तिम २-३ वर्षों में वे ज्ञानगुणसागर हनुमान जी की बड़ी प्रतिमा (तस्वीर) के समक्ष ध्यानस्थ होकर लगभग एक घण्टे तक हनुमद्भक्ति में तल्लीन रहते थे। जयपुर की वेदविज्ञानविषयक कार्यशाला में वे हनुमान जी की तस्वीर को साथ में लाये थे। यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि वे तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक विवेचन की आधुनिक शोधपद्धति में पारंगत थे, जिसके कारण उन्होंने तत्कालीन जोधपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के शोधविद्यार्थियों का दक्षतापूर्वक मार्ग-निर्देशन किया। उनका 'रससिद्धान्त की शास्त्रीय समीक्षा' नामक ग्रन्थ तुलनात्मक और समीक्षात्मक पद्धति से रचित एक मौलिक शोधग्रन्थ है। यह उल्लेखनीय है कि जब सत्तर के दशक में राजस्थान के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा सैकण्डरी स्कूल (हाई स्कूल) के पाठ्यक्रम में तृतीय भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य किया गया, तब पहली बार संस्कृत-पुस्तक (अनुभवाधारित सुबोध व्याकरण सहित) पूज्य स्वामी जी ने ही संकलित और सम्पादित की थी।